अध्याय 35

अड़तालीस लेवीय नगर

इस अध्याय में इस्राएलियों के भूमि के भाग पर ज़ोर दिया जाना जारी रहता है। चूंकि लेवी गोत्र को अन्य गोत्रों के समान भूमि का भाग नहीं मिला, इसलिए उन्हें अड़तालीस नगरों के साथ-साथ प्रत्येक नगर के आसपास की भूमि दी जानी थी। इनमें से छः नगर "शरण के नगर" होंगे। परमेश्वर की व्यवस्था अनजाने में हुई हत्या और हत्या के बीच अन्तर करती थी। जो कोई अनजाने में दूसरे की मृत्यु का कारण बना था, वह शरण नगर में भाग सकता था ताकि वह उस व्यक्ति के निकट कुटुम्बी द्वारा बदला लेने से बच सके जिसने उसे अनजाने में मार डाला था। एक निर्दोष व्यक्ति को इन नगरों में से एक में शरण मिल सकती था, और महायाजक की मृत्यु के बाद वह अपने घर वापस लौट सकता था।

अध्याय व्यवस्थित रूप से चार भागों में व्यवस्थित किया गया है, प्रत्येक अनुभाग तार्किक रूप से अगले तक ले जाता है:

35:1-8	लेवियों को सभी गोत्रों से अड़तालीस नगर मिलने वाले थे, जिनमें से छः को शरण के नगर ठहराया गया था।
35:9-15	छः नगरों का विवरण।
35:16-25	न्यायियों के लिए खूनियों (जो अनजाने में हत्या करते हैं) और हत्यारों में भेद करने में सहायता करने के लिए नियम।
35:25-34	शरण के नगरों में न्यायियों के द्वारा किए गए न्याय का परिणाम। ये खूनियों और हत्यारों दोनों के लिए निर्दिष्ट थे।

निम्नलिखित चर्चा इन नियमों और उनके महत्व पर विचार करेगी।

लेवीय नगरों के विषय में (35:1-8)

[1]फिर यहोवा ने, मोआब के अराबा में, यरीहो के पास की यरदन नदी के तट पर मूसा से कहा, [2]"इस्राएलियों को आज्ञा दे, कि तुम अपने-अपने निज भाग की भूमि में से लेवियों को रहने के लिये नगर देना; और नगरों के चारों ओर की चराइयाँ भी उनको देना। [3]नगर तो उनके रहने के लिये और चराइयाँ उनके गाय-बैल और भेड़-बकरी आदि, उनके सब पशुओं के लिये होंगी। [4]और नगरों की चराइयाँ, जिन्हें तुम लेवियों को दोगे, वह एक-एक नगर की नगरपनाह से बाहर

चारों ओर एक-एक हज़ार हाथ तक की हों। [5]और नगर के बाहर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, और उत्तर की ओर, दो-दो हज़ार हाथ इस रीति से नापना कि नगर बीचों-बीच हो; लेवियों के एक-एक नगर की चराई इतनी ही भूमि की हो। [6]और जो नगर तुम लेवियों को दोगे उनमें से छ: शरण नगर हों, जिन्हें तुम को खूनी के भागने के लिये ठहराना होगा, और उनसे अधिक बयालीस नगर और भी देना। [7]जितने नगर तुम लेवियों को दोगे वे सब अड़तालीस हों, और उनके साथ चराइयाँ देना। [8]और जो नगर तुम इस्राएलियों की निज भूमि में से दो, वे जिनके बहुत नगर हों उनसे बहुत, और जिनके थोड़े नगर हों उनसे थोड़े लेकर देना; सब अपने अपने नगरों में से लेवियों को अपने ही अपने भाग के अनुसार दें।"

आयतें 1, 2. परमेश्वर ने जब इस्राएली मोआब के अराबा में, यरीहो के पास की यरदन नदी के तट पर थे तब **मूसा से बात की**, और उसे लेवियों के नगरों के बारे में विशिष्ट आज्ञाएँ दीं। **इस्राएलियों** को **लेवियों को ... रहने के लिए नगर देने थे।** ये नगर **उनके निज भाग** में से दिए जाने थे। उनके क्षेत्रों से, उन नगरों के आसपास के चरागाहों के साथ, **लेवियों** को एक निश्चित भाग दिया जाना था। लेवियों के विषय में दिशा-निर्देश अन्य गोत्रों के विषय में निर्देशों का नियमित रूप से पालन करते हैं (देखें 1:47-54 के बाद 1:1-46; 3:1-49 के बाद अध्याय 2; 26:57-62 के बाद 26:1-56)। यहाँ भी यही सच है: अन्य गोत्रों में देश के बंटवारे के विषय में टिप्पणियों के बाद, लेवी गोत्र पर चर्चा की गई है।[1] इन नगरों की आवश्यकता थी क्योंकि लेवियों को कनान में अन्य गोत्रों के समान भूमि का आवंटन नहीं किया गया था (देखें 18:20-24; 26:62)।

लेवियों को अन्य गोत्रों के समान भूमि का आवंटन क्यों नहीं किया गया? सम्भवतः परमेश्वर, लेवियों से जो उसके प्रति समर्पित रहे होंगे, चाहता था, कि वे समस्त देश में फैल कर रहें ताकि वे अन्य गोत्रों के लिए एक अच्छा प्रभाव बन सकें; या हो सकता है गोत्रों के बीच लेवियों को बिखेरना इस्राएल की धार्मिक एकता और शिक्षा को बनाए रखने में सहायता करने का परमेश्वर का तरीका था।[2]

आयत 3. नगर न केवल लेवियों को **एक रहने का** स्थान देंगे, परन्तु उनमें **चराइयाँ उनके गाय-बैल और भेड़-बकरी आदि, उनके सब पशुओं के लिये होंगी**। इस प्रकार से जो दशमांश उन्हें गोत्रों से प्राप्त होना था-उसकी पूर्ति के लिए-उनके नगरों के आसपास के चराईयों में उनके पशुओं का पालन करने के द्वारा उन्हें समर्थन प्रदान किया जाएगा।

आयतें 4, 5. लेवियों से सम्बन्धित **चराईयों** को प्रत्येक दिशा में नगर के केंद्र से एक हजार हाथ (लगभग 1,500 फीट) तक विस्तारित करना था। इन नगरों में से प्रत्येक ओर **दो हजार हाथ**[3] (लगभग 3,000 फीट) संपत्ति के साथ **पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, और उत्तर** में एक वर्ग का निर्माण करेंगी।[4] **नगर** को भूमि आवंटन के केंद्र में होना था, और आसपास के क्षेत्र को **... नगरों** के लिए **चराइयां** बनना था।

आयतें 6, 7. इन नगरों में से **छः नगरों** को **लेवियों** के लिए **शरण नगर** का काम करने लिए अलग किया गया था जहाँ पर **खूनी भाग** सकता था। शरण के इन

नगरों के **साथ ही** गोत्रों को लेवियों को अन्य **बयालीस** नगरों का आवंटन भी करना था जो कुल मिलाकर **अड़तालीस** नगर थे, जिनमें से सभी में **चराइयां** थीं। ये सभी नगर और उनके स्थान यहोशू 21 में दिए गए हैं।

आयत 8. विभिन्न गोत्रों द्वारा **लेवियों** को दिए गए **नगरों** की संख्या गोत्र और उसके क्षेत्र के आकार द्वारा निर्धारित की जानी थी। **बड़े** गोत्रों को **अधिक** देने की आवश्यकता होगी, जबकि **छोटे** गोत्रों को **कम** देना होगा, परन्तु **प्रत्येक** गोत्र को भाग में प्राप्त होने वाली **सम्पत्ति** के आकार के अनुपात में **[अपने] नगरों में से कुछ लेवियों को** देने की आवश्यकता थी।

शरण नगरों के विषय में (35:9-15)

9फिर यहोवा ने मूसा से कहा, 10"इस्राएलियों से कह: जब तुम यरदन पार होकर कनान देश में पहुँचो, 11तब ऐसे नगर ठहराना जो तुम्हारे लिये शरण नगर हों, कि जो कोई किसी को भूल से मार के खूनी ठहरा हो वह वहाँ भाग जाए। 12वे नगर तुम्हारे निमित्त पलटा लेने वाले से शरण लेने के काम आएँगे, कि जब तक खूनी न्याय के लिये मण्डली के सामने खड़ा न हो तब तक वह न मार डाला जाए। 13और शरण के जो नगर तुम दोगे वे छ: हों। 14तीन नगर तो यरदन के इस पार, और तीन कनान देश में देना; शरण नगर इतने ही रहें। 15ये छहों नगर इस्राएलियों के और उनके बीच रहनेवाले परदेशियों के लिये भी शरणस्थान ठहरें, कि जो कोई किसी को भूल से मार डाले वह वहीं भाग जाए।"

आयतें 9-11. परमेश्वर ने शरण के छः नगरों के विषय में विशिष्ट निर्देश दिए (देखें निर्गमन 21:12, 13; व्यव. 4:41-43; 19:1-13; यहोशू 20)। इनका उद्देश्य **खूनी** के लिए शरण प्रदान करना था। जिसने **किसी को भूल से मार दिया था**, वह सुरक्षा के लिए इन नगरों में से एक में भाग सकता था।

आयत 12. इन **नगरों** में से एक में शरण लेने वाला **खूनी** उसके निमित्त **पलटा लेने वाले** (גֹּאֵל, *गो' एल*) से सुरक्षित होगा। पुराने नियम में शब्द *गो' एल* एक निकट पुरुष कुटुम्बी (छुड़ाने वाला कुटुम्बी) का सन्दर्भ देता है जिसके कई कर्तव्य थे जिनमें सम्मिलित था: (1) उस भूमि को खरीदना जो एक निर्धन परिवार के सदस्य द्वारा बेची गई थी (लैव्य. 25:25), (2) एक परिवार के सदस्य को दासत्व से मोल लेना (लैव्य. 25:48), (3) किसी मृत परिवार के सदस्य से कर्ज लिया गया धन प्राप्त करना (गिनती 5:8), और (4) अनुबंधित विवाह (रूत 3:13)। इस संदर्भ में, *गो' एल* ने "पलटा लेने वाला" के रूप में एक अन्य भूमिका में कार्य किया है - जो "लहू का बदला लेने वाला" है (35:19, 21, 24, 25, 27)।

पलटा लेने वाला उस व्यक्ति का करीबी रिश्तेदार था जिसे मारा गया था; उसके कुटुम्बी की यह जिम्मेदारी थी कि वह हत्यारे का न्याय (मृत्यु) करे। इस तरह की प्रणाली को व्यक्तिगत प्रतिशोध को अनुमति देने के सम्बन्ध में नहीं सोचा जाना चाहिए - जैसा कि पलटा लेने वाले व्यक्ति द्वारा "आँख के बदले आँख" लेना, स्पष्ट

रूप से यीशु के समय में कुछ रब्बियों द्वारा वकालत किया गया था। बल्कि, पुलिस बल की अनुपस्थिति में, पलटा लेने वाला एक हत्यारे को दण्ड देने के लिए समाज का प्रतिनिधि था। इस अभ्यास को नियमित करने वाले नियम, यहाँ और अन्य समान वाक्यांशों में पाए जाते हैं, और इनकी मंशा यह सुनिश्चित करना था कि न्याय किया जाएगा। यह सुनिश्चित करने के लिए कि "लहू का बदला लेने वाला" (व्यव. 19:6, 12) की भूमिका खूनी झगड़े की वजह न बने जो शांति को बाधित करती है, "शरण के छह नगरों को 'क्रोध-शान्त' होने का चरण प्रदान करने के लिए साथ ही आरोपी के लिए उचित प्रक्रिया के लिए स्थापित किया गया था।"[5]

इस प्रणाली से, **जब तक खूनी न्याय के लिये मण्डली के सामने खड़ा न हो** और उसे दोषी न पाया जाए **तब तक वह मार डाला नहीं जाएगा**। जो हत्या के आरोप से बरी होगा वह बच जाएगा (देखें यहोशू 20:1-6)। यह प्रणाली आज लोगों को विचित्र लग सकती है, परन्तु व्यवस्था का उल्लंघन करने वालों को पकड़ने और दण्डित करने के लिए उस समय इस्राएल में कोई पेशेवर पुलिस बल नहीं था। इसलिए, परमेश्वर ने इस समस्या का समाधान प्रदान किया कि जब एक मनुष्य दूसरे को मारे तो क्या करना चाहिए।

आयतें 13-14. गोत्रों के द्वारा दिए गए **शरण के जो छ: नगर थे** उनमें **से तीन नगर तो यरदन के** पूर्व में थे। उनके नाम गोलान, रामोत, और बेसेर (व्यव. 4:41-43; यहोशू 20:8) थे। अन्य **तीन** जो कनान में थे, वे कादेश शेकेम और हेब्रोन थे (यहोशू 20:7)। ये छः नगर यरदन के अपने सम्बन्धित क्षेत्र के उत्तरी, मध्य और दक्षिणी क्षेत्रों तक फैले थे। रणनीतिक रूप से पूरे देश में स्थापित किए गए छः नगरों के कारण खूनी का पलटा लेने वाले से पहले सुरक्षा तक पहुंचना आसान हो गया।

आयत 15. ये **छः नगर** देश में रहने वाले किस भी व्यक्ति के लिए **शरणस्थान** होने वाले थे, इस्राएलियों और गैर-इस्राएलियों **(परदेशी और ... यात्री के लिए)** दोनों के लिए। कोई दुर्घटना के कारण किसी दूसरे की मृत्यु का कारण बना था उसे वहाँ पर **भाग जाने** की अनुमति थी।

शरण नगर इस अध्याय का प्राथमिक विषय प्रतीत होता है। यद्यपि अन्य लेवीय नगर भी महत्वपूर्ण थे, उनके विषय में जानकारी शरण के नगरों से सम्बन्धित नियमों के लिए एक प्रस्तावना के रूप में कार्य करती है। अध्याय के शेष नियम इस बात से सम्बन्धित हैं कि उन नगरों को किस प्रकार कार्य करना था।

हत्या और अनजाने में हुई हत्या में अन्तर करने के विषय में नियम (35:16-25)

16"परन्तु यदि कोई किसी को लोहे के किसी हथियार से ऐसा मारे कि वह मर जाए, तो वह खूनी ठहरेगा; और वह खूनी अवश्य मार डाला जाए। 17और यदि कोई ऐसा पत्थर हाथ में लेकर, जिससे कोई मर सकता है, किसी को मारे, और

वह मर जाए, तो वह भी खूनी ठहरेगा; और वह खूनी अवश्य मार डाला जाए। [18]या कोई हाथ में ऐसी लकड़ी लेकर, जिससे कोई मर सकता है, किसी को मारे, और वह मर जाए, तो वह भी खूनी ठहरेगा; और वह खूनी अवश्य मार डाला जाए। [19]लहू का बदला लेने वाला आप ही उस खूनी को मार डाले; जब भी वह मिले तब ही वह उसे मार डाले। [20]और यदि कोई किसी को बैर से ढकेल दे, या घात लगाकर कुछ उस पर ऐसे फेंक दे कि वह मर जाए, [21]या शत्रुता से उसको अपने हाथ से ऐसा मारे कि वह मर जाए, तो जिसने मारा हो वह अवश्य मार डाला जाए; वह खूनी ठहरेगा; लहू का बदला लेने वाला जब भी वह खूनी उसे मिल जाए तब ही उसको मार डाले। [22]परन्तु यदि कोई किसी को बिना सोचे, और बिना शत्रुता रखे ढकेल दे, या बिना घात लगाए उस पर कुछ फेंक दे, [23]या ऐसा कोई पत्थर लेकर, जिससे कोई मर सकता है, दूसरे को बिना देखे उस पर फेंक दे, और वह मर जाए, परन्तु वह न उसका शत्रु हो, और न उसकी हानि का खोजी रहा हो; [24]तो मण्डली मारने वाले और लहू का बदला लेने वाले के बीच इन नियमों के अनुसार न्याय करे; [25]और मण्डली उस खूनी को लहू का बदला लेने वाले के हाथ से बचाकर उस शरण नगर में जहाँ वह पहले भाग गया हो लौटा दे और जब तक पवित्र तेल से अभिषेक किया हुआ महायाजक न मर जाए तब तक वह वहीं रहे।"

आयतें 16-21. शरण नगरों का उद्देश्य किसी ऐसे व्यक्ति के लिए शरण प्रदान करना था, जिसने एक व्यक्ति को अनजाने में को मार दिया था (35:15), परन्तु जो लोग ऐसे मामलों का न्याय करते हैं, वे कैसे जान सकते हैं कि एक व्यक्ति ने अनजाने में दूसरे को मार डाला था या नहीं? जो आयतें आगे आती हैं वे इस प्रश्न का उत्तर देती हैं।

एक मृत्यु को हत्या माना जाए या नहीं, यह तय करने में दो कारकों का उपयोग किया जाता था। हत्या जिस तरह से हुई यह जरूरी नहीं कि वह निर्धारण करने वाला कारक था। चाहे इस व्यक्ति ने दूसरे को **यदि कोई किसी को लोहे के किसी हथियार से ऐसा मारे कि वह मर जाए, यदि कोई ऐसा पत्थर हाथ में लेकर, जिससे कोई मर सकता है,** या **कोई हाथ में ऐसी लकड़ी लेकर, जिससे कोई मर सकता है,** या **यदि कोई किसी को बैर से ढकेल दे, या घात लगाकर कुछ उस पर ऐसे फेंक दे** कि वह मर जाए, तो उसे वह खूनी ठहरेगा। यह तय करने के लिए यह हत्या में, हत्यारे का उद्देश्य था या नहीं। जिसे उसने मारा था क्या वह उस व्यक्ति से घृणा करता था क्या उसने **शत्रुता** निभाई? दूसरा कारक हत्यारे का पूर्वचिन्तन था। क्या उसने घात लगाकर उसे मारा था? यदि ये दो कारक उपस्थित थे, तो हत्यारे को हत्या का दोषी माना जाना था, और उसे **मार डाला जाना** था।

जिस व्यक्ति को मृत्यु का दण्ड देना था वह **लहू का बदला लेने वाला था**। मारे गए व्यक्ति के निकट कुटुम्बी की जिम्मेदारी थी कि वह **लहू का बदला लेने वाला जब भी वह खूनी उसे मिल जाए तब ही उसको मार डाले ताकि** न्याय सुनिश्चित किया जाए।

आयतें 22, 23. दूसरे हाथ पर, यदि हत्या **अचानक बिना शत्रुता** के हुई थी - यदि घटना दुर्घटनावश हुई थी, या हत्यारा मरने वाले पर **घात नहीं लगाए** था - तो वह जिसने उसे मारा था वह एक खूनी नहीं था। आयत 23 यह निर्दिष्ट करती है कि **यदि कोई किसी को बिना सोचे, और बिना शत्रुता रखे ढकेल दे, या बिना घात लगाए उस पर कुछ फेंक दे**, यदि वह न उसका **शत्रु** हो, और न **उसकी हानि का खोजी** रहा हो, तो वह हत्या का दोषी नहीं था।

आयतें 24, 25. मण्डली को **मारने वाले और लहू का बदला लेने** वाले के **बीच इन नियमों के अनुसार न्याय करना** था। उस खूनी को जो कि हत्या का दोषी नहीं था उसे पलटा लेने वाले के हाथ में नहीं दिया जाना था। बल्कि, उसे लहू का बदला लेने वाले के हाथ से **बचाकर** उस **शरण नगर** में जहाँ वह पहले भाग गया हो **लौटा देना था**।

किसी को मारने के परिणामों के विषय में (35:25-34)

खूनी के परिणाम (35:25-28)

[25]"और मण्डली उस खूनी को लहू का बदला लेने वाले के हाथ से बचाकर उस शरण नगर में जहाँ वह पहले भाग गया हो लौटा दे और जब तक पवित्र तेल से अभिषेक किया हुआ महायाजक न मर जाए तब तक वह वहीं रहे। [26]परन्तु यदि वह खूनी उस शरण नगर की सीमा से जिसमें वह भाग गया हो बाहर निकलकर और कहीं जाए, [27]और लहू का बदला लेने वाला उसको शरण नगर की सीमा के बाहर कहीं पाकर मार डाले, तो वह लहू बहाने का दोषी न ठहरे। [28]क्योंकि खूनी को महायाजक की मृत्यु तक शरण नगर में रहना चाहिये; और महायाजक के मरने के पश्चात वह अपनी निज भूमि को लौट सकेगा।"

आयत 25. जिस व्यक्ति ने दूसरे की हत्या की थी, परन्तु हत्या का दोषी नहीं पाया गया, फिर भी उसे उसके कृत्य के परिणाम भुगतने होंगे। **महायाजक की मृत्यु तक** उसे शरण नगर में रहना होगा। जब एक नए महायाजक का **पवित्र तेल से अभिषेक** किया जाता था, तो इस घटना ने शरण नगर में रहने वालों के लिए एक नया युग चिह्नित किया। समाज से अलग रहने की उनकी अवधि समाप्त हो चुकी थी।

आयतें 26-28. यदि **खूनी** ने महायाजक की मृत्यु से पहले किसी भी समय शरण नगर को छोड़ दिया, तो **लहू का बदला लेने** वाला उसे दोष भावना या दण्ड के भय के बिना मार सकता था। इस तरह के मामले में, व्यवस्था में केवल यह नियम था कि उसे **महायाजक की मृत्यु तक** अपने **शरण नगर में ही रहना चाहिए** था। उसके **नगर की सीमा** के बाहर खूनी की सुरक्षा नहीं की गई थी।

महायाजक की मृत्यु के बाद, खूनी अपने घर, **अपनी निज भूमि** पर लौट सकता था। उस समय तक, वह शरण नगर तक ही सीमित था। सम्भवतः, वह उस नगर

में स्वतंत्र रूप से घूम सकता था, परन्तु वह घर जाने में असमर्थ था।

हत्यारे के लिए परिणाम (35:29-32)

29"तुम्हारी पीढ़ी-पीढ़ी में तुम्हारे सब रहने के स्थानों में न्याय की यह विधि होगी। 30और जो कोई किसी मनुष्य को मार डाले वह साक्षियों के कहने पर मार डाला जाए, परन्तु एक ही साक्षी की साक्षी से कोई न मार डाला जाए। 31और जो खूनी प्राणदण्ड के योग्य ठहरे उससे प्राणदण्ड के बदले में जुरमाना न लेना; वह अवश्य मार डाला जाए। 32और जो किसी शरण नगर में भागा हो उसके लिये भी इस मतलब से जुरमाना न लेना, कि वह याजक के मरने से पहले फिर अपने देश में रहने को लौटने पाए।"

आयतें 29, 30. परमेश्वर ने कहा कि ये बातें **तुम्हारी पीढ़ी-पीढ़ी में तुम्हारे सब रहने के स्थानों में न्याय की यह विधि होगी**। उनका निर्णय था यह था कि **हत्यारे** को **खूनी** के विपरीत, मृत्यु दण्ड दिया जाना था। मण्डली (35:24) द्वारा हत्यारे पर पारित निर्णय को **साक्षियों के कहने** के द्वारा मजबूती से स्थापित किया जाना था। परमेश्वर ने ज़ोर देकर कहा **एक ही साक्षी की साक्षी से कोई न मार डाला जाए** (देखें व्यव. 17:6; 19:15; इब्रा. 10:28)।

आयत 31. हत्यारे के जीवन के लिए कोई **जुरमाना** स्वीकार नहीं किया जा सकता (देखें 2 शमूएल 21:1-4)। दूसरे शब्दों में, वह अपने अपराध के लिए दण्ड भुगतने से बचने के लिए पैसे का भुगतान नहीं कर सकता था उसे **अवश्य मार डाला जाना था**। यह कथन कि किसी ऐसे अपराध के लिए जिसे पहली दृष्टि में "हत्या" कहेंगे ऐसे किसी अपराधी को बचाने के लिए किस जुरमाने का भुगतान नहीं किया जा सकता था यह संकेत करता है कि छोटे अपराधों के लिए जुरमाने का भुगतान किया जा सकता था।

आयत 32. इसके साथ ही, किसी एक ऐसे व्यक्ति को जिसने अनजाने में किसी को मारा था उसे **शरण नगर** से शीघ्र बाहर निकलने की अनुमति देने के लिए **जुरमाना** नहीं लिया जा सकता था। एक बार जब खूनी ने इन निर्दिष्ट नगरों में से एक में शरण ले ली थी, तो **वह याजक की मृत्यु से पहले**, लहू का बदला लेने वाले से सुरक्षित होकर अपने घर पर वापस नहीं **लौट सकता था**।

देश के लिए परिणाम (35:33, 34)

33"इसलिये जिस देश में तुम रहोगे उसको अशुद्ध न करना; खून से तो देश अशुद्ध हो जाता है, और जिस देश में जब खून किया जाए तब केवल खूनी के लहू बहाने ही से उस देश का प्रायश्चित्त हो सकता है। 34जिस देश में तुम निवास करोगे उसके बीच मैं रहूँगा, उसको अशुद्ध न करना; मैं यहोवा तो इस्राएलियों के बीच रहता हूँ।"

आयत 33. लोगों को हत्या नहीं करनी थी क्यों लहू **जो बहाया गया था** वह **देश को अशुद्ध करेगा**। इस प्रकार की अशुद्धता का प्रायश्चित केवल **लहू बहाने ही से**, या वह व्यक्ति जिसने लहू बहाया था केवल उसकी मृत्यु से हो सकता था।

आयत 34. देश को लहू बहाने के द्वारा अशुद्ध नहीं करना था क्योंकि **यहोवा इस्राएलियों के बीच में** निवास करता था। देश परमेश्वर की उपस्थिति के कारण पवित्र था, इसी कारण लोगों को एक दूसरे की हत्या नहीं करनी थी, न तो अनजाने में और न ही जानबूझकर।

अनुप्रयोग

परमेश्वर के नियमों का महत्व (अध्याय 35)

गिनती अध्याय 35 में पाए जाने वाले नियम इन सत्यों को दर्शाते/या दृढ़ करते हैं:

1. *मानव जीवन की पवित्रता।* मानव जीवन इतना पवित्र था कि जिस किसी ने इसे जानबूझकर किया था उसे मार डाला जाता था। यह अध्याय उस आज्ञा के महत्व को दर्शाता है “तू खून न करना” (निर्गमन 20:13; देखें उत्पत्ति 9:5, 6)। मानव जीवन इतना विशेष है कि जिसने अनजाने में किसी व्यक्ति को मारा था, उसे शायद कई सालों तक शरण नगर में रहने की आवश्यकता थी।

2. *देश की पवित्रता।* परमेश्वर इस्राएल को जो देश दे रहा था वह पवित्र होगा क्योंकि वह अपने लोगों के बीच में था। इस अध्याय में मृत्यु का चित्रण अशुद्ध करने वाले के रूप में किया गया है। जब यह परमेश्वर की पवित्र देश में हुआ, तो इसने देश को अशुद्ध कर दिया।[6] इसी कारण, परमेश्वर के लोगों को मानव लहू को बहाने के प्रति सावधान रहना था।

3. *प्रायश्चित या परिशोधन की आवश्यकता।* एक बार जब लहू बहाने से देश अशुद्ध हो गया था, तो परिशुद्धि की आवश्यकता थी। प्रायश्चित मृत्यु के माध्यम से आया- या तो खूनी की मृत्यु या महायाजक की मृत्यु।

4. *व्यवस्था की निष्पक्षता।* परमेश्वर ने मृत्यु के विषय में जो व्यवस्था दी थी उसकी निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए इसमें जाँच और संतुलन सम्मिलित थे। एक खूनी का मारा जाना उचित था; मारे गए व्यक्ति के किसी निकट कुटुम्बी के द्वारा हत्यारे को घात करना भी उचित था। इसके साथ ही, यह भी तार्किक था कि आरोपी खूनी को केवल एक साक्षी की बात पर न मार डाला जाए, बल्कि उसे शरण के नगरों में से एक तक भागने की अनुमति मिले और वहाँ उस पर मुकद्दमा चलाए जाने और उसके दोषी या निर्दोष होने का निर्णय किया जाए। यह उचित था कि ऐसा कोई भी व्यक्ति जिसने अनजाने में किसी को मार डाला था उस पर शरण के एक नगर में मुकद्दमा चलाया जाए, और एक हत्यारे और खूनी के मध्य अन्तर करने के लिए जो मापदंड दिए गए थे वे निष्पक्ष थे। परमेश्वर का न्याय और मानव जीवन का मूल्य इस तथ्य से झलकते हैं एक ऐसा मनुष्य जिसने अनजाने में किसी को मारा था उसे अपने घर से बाहर निकाल दिया गया था।

परमेश्वर ने सदैव ही जानबूझकर किए गए पाप और अनजाने में किए गए पाप के बीच भेद किया है (देखें 15:22-31; इब्रा. 10:26)। उन लोगों के समान जिन्होंने प्राचीन इस्राएल में दुर्घटनावश किसी को मार दिया था, पश्चातापी पापी के लिए सुरक्षा का एक शरणस्थान है। चूंकि सबने पाप किया है (रोम. 3:23) तो हम सभी को भाग जाने के लिए एक स्थान की आवश्यकता है। शरण मसीह में मिलती है, जो हमारे लिए हमारा महायाजक और हमारा बलिदान दोनों बना। (देखें इब्रा. 6:17-20)।

यीशु की शरण (35:9-34)

जब यीशु क्रूस का सामना कर रहा था, उसके पर डाले जा रहे इत्र के अवसर को (मरकुस 14:8) उसने अपनी मृत्यु और दफ़नाने से पहले अभिषेक के प्रतीक के रूप में देखा। इब्रानियों के लेखक ने कहा कि यीशु अपनी आज्ञाकारिता के कारण उन सभी के लिए उद्धार का एक स्रोत बना गया जो उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं (इब्रा. 5:7-10)। यीशु मसीह के अभिषेक ने उसे एक स्थायी महायाजक के रूप में मध्यस्थता करने अनुमति थी (इब्रा. 7:23-27)। पुराने नियम में महायाजक के द्वारा प्रायश्चित के कार्य के समान ही, यीशु कि मृत्यु ने उस किसी भी शत्रुता को समाप्त कर दिया जो परमेश्वर की हमारे विरुद्ध है (कुलु. 2:13, 14)।

इस्राएलियों के समान जिन्हें एक शरण नगर की आवश्यकता महसूस हुई, हमें आज यीशु की आवश्यकता है। पौलुस ने कहा कि हमारे पाप ने हमें हानि के जोखिम में डाल दिया है (रोम. 7:9-11)। शैतान हमारे पीछे पड़ा है। वह हमारे परमेश्वर के साथ सम्बन्ध को नष्ट करने की खोज मर रहता है (रोम. 6:23; 7:24)। तो हमें कौन छुड़ा सकता है?

परमेश्वर की ईश्वरीय योजना के माध्यम से, उसने हमें शरणस्थान प्रदान किया है। यह हमें उसके पुत्र, यीशु मसीह में मिलता है (इब्रा. 4:14-16; 6:18-20)। आइए हम इन वचनों में उपयोग की गई शब्दावली को देखें: “अनुग्रह,” “दया,” “शरणस्थान,” हम सुरक्षा के लिए मसीह की ओर भागते हैं क्योंकि गर्मजोशी से हमारा पीछा किया जा रहा है।

न केवल परमेश्वर उन लोगों की रक्षा करता है जो इस जीवन के अन्त तक विश्वासयोग्य हैं, परन्तु उसकी दिव्य सुरक्षा भी अनन्तकाल तक व्याप्त है। प्रकाशितवाक्य 21:27 और 22:15 में, यूहन्ना ने कहा उस स्वर्गीय अनन्त शरण नगर में कोई अपवित्र वस्तु, और हानिकारक वस्तु कभी प्रवेश नहीं करेगी। हम इस समय कहाँ रह रहे हैं यह हम अनन्त तौर पर कहाँ रहेंगे उसका निर्णय करेगा। हमें इसका निर्णय करना चाहिए कि हम मसीह में पाए जाने वाले शरणस्थान के बाहर हैं या भीतर। जो लोग उस शरणस्थान से बाहर हैं उनके लिए अब भी उसके पास भाग कर आने के लिए समय बाकी है। GMT

मृत्युदण्ड (35:16-21)

मूसा के व्यवस्था में, परमेश्वर ने स्पष्ट रूप से हत्या के लिए मृत्युदण्ड का निर्णय किया। नया नियम कुछ अलग नहीं सिखाता है। मसीही व्यक्तिगत रूप से अपने शत्रुओं से प्रेम करते हैं और उन्हें क्षमा करते हैं और जो लोग उनकी बुराई करते हैं उनका भला करते हैं। जबकि कलीसिया (आत्मिक इस्राएल) को आत्मिक शत्रुओं से आत्मिक हथियारों के द्वारा लड़ने के लिए कहा गया है, उसे विधर्मियों या हत्यारों को मार डालने का कोई अधिकार नहीं है।

पृथ्वी के राज्य अलग हैं। पौलुस ने कहा कि मसीहियों को हाकिमों की आज्ञाओं का पालन करना चाहिए क्योंकि उनके पास "तलवार" है यह इस बात का संकेत करता है कि उनके पास ऐसा करने का अधिकार परमेश्वर के द्वारा दिया गया है (रोम. 13:1-7)। बाइबल के दृष्टिकोण से, इसलिए, हमें मृत्युदण्ड देने के सरकार के अधिकारों को स्वीकार करना चाहिए।

निस्संदेह, एक मसीही व्यक्तिगत तौर पर यह निर्णय ले सकता है कि वह इस अभ्यास में कोई भाग नहीं लेना चाहता। विवेक कारण, वह ऐसा व्यक्ति बनने से मना कर सकता है जो वास्तव में एक लीवर को खींचकर या कोई दवा देकर किसी को मृत्यु देता है। मसीहियों के रूप में, कुछ लोग मृत्युदण्ड के विरोध में तर्क दे सकते क्योंकि आज के समय में यह जिस आधार पर अभ्यास किया जाता है वे निष्पक्ष नहीं होते। हालाँकि, हम यह तर्क नहीं दे सकते, कि बाइबल इससे मना करती है।

समाप्ति नोट

[1]गॉर्डन जे. वेनहैम, *गिनती*, द टिंडेल ओल्ड टेस्टामेंट कमेंट्रीज (डाउनर्स ग्रोव, इलनॉयसः इंटर-वर्सिटी प्रेस, 1981), 233-34. [2]रॉय गेन, *लैव्यव्यवस्था, गिनती*, द NIV एप्लिकेशन कमेन्ट्री (ग्रान्ड रेपिड्स, मिशिगन: जोनडर्वन, 2004), 795. [3]कुछ रब्बियों ने सब्त के दिन की यात्रा की दूरी के लिए गिनती 35:5 के "दो हज़ार हाथ" का प्रयोग किया, लगभग ¾ मील (देखें प्रेरितों 12:12)। [4]वेन्हम, 234, में, चित्र देखें. [5]जॉन एच. वाल्टन, विक्टर एच. मैथ्यूज, एण्ड मार्क डब्ल्यू. शावालास, *द IVP बाइबल बैकग्राउंड कमेंट्री: ओल्ड टेस्टमेंट* (डाउनर्स ग्रोव, इलिनोय: इंटरवर्सिटी प्रेस, 2000), 169-70. [6]डेनिस टी. ओल्सन, *गिनती*, इंटरप्रिटेशन (लुइविल: जॉन क्नोक्स प्रेस, 1996), 190.